RNI No.: RAJBIL/2013/54153

ISSN : 2322-0074

अलख दृष्टि

ALAKH DRISHTI

(भाषा, दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं मानविकी की संवाहिका त्रैमासिक शोध पत्रिका)

वर्ष-2 • अंक-5 • त्रैमासिक • जनवरी-मार्च, 2014

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
1.	बौद्ध मत सार्वदेशिक, सार्वकालिक एवं सर्वजनीन कैसे?	प्रो. प्रद्युम्न दुबे	06-10
2.	माध्यमिक स्तर के हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की संस्कृत भाषा में शब्द व वाक्य-निर्माण	प्रो. लोकमान्य मिश्रा, डॉ. वन्दना अरोड़ा	11-18
3.	जैन संस्कृति में विवाह	डॉ. अनेकान्त कुमार जैन	19-22
4.	जैन दर्शन में मोक्ष और शांति की अवधारणा	डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़	23-26
5.	जीवन विज्ञान द्वारा बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में मूल्य विकास	प्रो. हेमलता तलेसरा	27-33
6.	घरेलू हिंसा : दुष्प्रभाव एवं समाधान	डॉ. वीरेन्द्र भाटी मंगल	34-37
7.	Educational Philosophy of Swami Vivekananda: An Innovative View	Tripti Tripathi	38-42
8.	Women in Vedic era	DR. Nidhi Shrivastava	43-47
9.	*Anekānta:* A Way to Peace - building	Samani Rohit Pragya	48-54
10.	Swami Vivekananda: His Philosophy And Teaching	Bhabagrahi Pradhan	55-57
	पुस्तक समीक्षा	डॉ. अरविन्द विक्रम सिंह	58

Scanned by CamScanner

जैन दर्शन में मोक्ष और शांति की अवधारणा

डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़

मनुष्य दो प्रकार के संसार में जीता है– बाह्य संसार और अंतःसंसार। मानवीय चेतना का स्वाभाविक प्रवाह बहिर्मुखी होता है। मनुष्य के पास अपनी चेतना को अभिव्यक्त करने के दो माध्यम हैं– इंद्रियाँ और मन। इन्द्रियाँ बाह्य जगत् को देखती हैं। आँख बाहरी रूपों का अवलोकन करती है। कान बाह्य शब्दों को सुनता है। नासिका बाहरी गन्ध को ग्रहण करती है। जिह्वा बाह्य पदार्थों का रसास्वादन करती है और स्पर्शनेन्द्रिय भी बहिर्वर्ती स्पर्श का अनुभव करती है। इसी प्रकार मन की पहुँच भी बहिर्जगत् तक ही है। इस दृष्टि से मनुष्य का परिचय बाह्य जगत् से ही अधिक है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि संपूर्ण बाह्य जगत् से मनुष्य का परिचय है। बाह्य जगत् से थोड़ा-बहुत परिचय है, किन्तु अन्तर्जगत् से वह परिचित है ही नहीं। अन्तर्जगत् का परिचय संभव भी नहीं है। क्योंकि इन्द्रिय और मन के स्तर पर जीने वाला कोई भी प्राणी अन्तर्जगत् की जानकारी कैसे कर सकता है? अन्तर्जगत् से परिचित होने का पहला चरण है– चेतना की अन्तर्मुखता। जब तक मनुष्य पुराने अध्याय को पढ़ता चला जाता है, नये अध्याय का सृजन नहीं होता। नया अध्याय खुले बिना अन्तर्जगत् का परिचय नहीं मिलता। इस परिचय के बिना न तो शान्ति का स्वरूप-बोध हो सकता है और न उसकी प्राप्ति हो सकती है। शान्ति को उपलब्ध करने के लिए चेतना को अन्तर्मुखी बनाना नितान्त अपेक्षित है। अन्तुर्मखता के स्तर पर जीने वाला व्यक्ति ही शान्ति को हस्तगत कर सकता है।

जो व्यक्ति शान्ति का इच्छुक है, प्रतिसंलीनता या प्रत्याहार को साधना चाहता है, उसे और कुछ करने की अपेक्षा नहीं है, केवल दिशा का परिवर्तन करना है। उसकी जो तन्मयता पदार्थ के प्रति है, उसे अपने अस्तित्व के प्रति मोड़ना है। बाहरी आनन्द की खोज में भटकने वाला व्यक्ति मृगतृष्णा को चरितार्थ कर देता है। आनन्द अगर कहीं है तो वह अपने भीतर है। भीतर छिपे हुए आनंद, शक्ति और चेतना के प्रवाह को समझना तथा उसे जागृत कर उसका अनुभव करना अन्तर्मुखता का रहस्य है। इस रहस्य को समझने वाला व्यक्ति कभी अशान्त जीवन नहीं जीता।

Scanned by CamScanner

प्रतिसंलीनता या प्रत्याहार एक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से साधक अन्तर्मुखी बनता है। अन्तर्मुखता के बिना स्थायी शान्ति तो क्या, क्षणिक शान्ति भी नहीं मिलती। शान्ति शब्द सुनने में जितना प्रिय है, परिणति में और अधिक प्रिय हो सकता है। किन्तु अशान्ति को शान्ति में बदलने की प्रक्रिया को समझे बिना यह सब बहुत मुश्किल हो जाता है। पूरी प्रक्रिया का अवबोध एक साथ न भी हो, पर पदार्थ के प्रति रही हुई तन्मयता को अपने अस्तित्व के प्रति रूपान्तरित करने से इस समस्या का समाधान हो सकता है। बंधन और मोक्ष का कारण मन ही होता है। हमारा जो मन विषयों के प्रति आसक्त होता है वह बंधन की ओर ले जाने वाला होता है और जो मन वीतरागता में आसक्त है, वह मोक्ष की ओर ले जाने वाला होता है। एक आदमी जैसा कार्य करता है दूसरा आदमी वैसा ही कार्य करता है परन्तु भावना में बड़ा अन्तर हो सकता है। जिसका मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं है, वह आदमी अयुक्त होता है। जो आदमी अयुक्त होता है उसमें समता की बुद्धि का संचार नहीं होता यानि उसकी बुद्धि समीचीन काम करने वाली नहीं होती। जो अयुक्त है उसमें अच्छी भावना भी नहीं होती। उसमें अशुभ भाव आते रहते हैं। जिसमें अच्छी भावना नहीं है, उसे शांति नहीं मिलती और जो अशान्त है, उसको सुख कहां से मिलेगा?

मोह के विषाद के विष से आकुल जगत् में शुभ भावना के बिना विद्वान लोगों के मन में भी शांति का संचार नहीं होता और शांति के अभाव में सुख भी नहीं मिलता। यही बात गीता में आई है कि जो अयुक्त है उसमें न तो सम्यक् बुद्धि का विकास होता है, न ही भावना का विकास होता है। भावना को शुद्ध करने के लिए हम अपने मन और इन्द्रियों को संयमित रखने का प्रयास करें। गीता और उत्तराध्ययन में भावना की शुद्धि की बात कही गई है। हम प्रयास करें कि हमारे भाव शुद्ध रहें। हमारा मन शुद्ध रहे। हमारे मन में अशुभ विचार न आए, **शिवसंकल्पमस्तु मे मनः** - मेरा मन शिव, शुभ संकल्प वाला रहे। भावना शुद्धि के द्वारा अवश्य कल्याण होगा।

सुख और दुःख को समान कर लेना बड़ी महत्वपूर्ण बात भी है और कठिन बात भी है। आदमी के मन में सुखाकांक्षा होती है। वह दुःख से दूर भागना चाहता है। ऐसी स्थिति में सुख और दुःख को समान मानने की बात बड़ी ऊंची बात है। यह एक शाश्वत सत्य है कि आदमी दुःख से डरता है, दूर भागता है। जब दुःख या कठिनाई आती है तो आदमी कितना कष्टापतित बन जाता है। दुःख से आदमी डरे नहीं। इसके लिए आवश्यक है कि सुख में ज्यादा खुशी न हो। अगर सुख में ज्यादा खुशी करता है तो कष्ट में दुःख भी होना संभव है। इसलिए दोनों पर ध्यान देना चाहिए कि सुख की स्थिति आ जाए तो खुशी न मनाए, शांत व संतुलित भाव में रहे और कष्ट आ जाए तो उससे डरे नहीं, उसको भी शांत भाव से झेलने का प्रयास करे। जिस प्रकार धरती हमारे लिए आधार-स्वरूप है और हम धरती पर टिके हुए हैं, उसी प्रकार जो अतींद्रिय ज्ञानी हैं, केवलज्ञानी हैं-उनका बुद्धत्व और केवलज्ञान शांति पर टिका हुआ है। शांति न हो तो केवलज्ञान हो ही नहीं सकता। न केवल केवलज्ञान, अपितु सम्यक् दर्शन भी एक सीमा तक शांति पर ही आधारित होता है। शांति नहीं है तो सम्यक्त्व भी समाप्त हो जाता है। श्रावकत्व को भी शांति चाहिए। आदमी को शांति संपन्न बनने के लिए अथवा मोक्ष-प्राप्ति के लिए मृदु व्यवहार-संपन्न बनना होगा और चंडालोचित कार्य को त्यागना होगा।

जैन वाङ्मय में दसवेआलियं सूत्र से उद्धृत श्लोक में आठ बातें बताई गई हैं, जो मोक्ष-प्राप्ति अथवा दुःख मुक्ति में बाधक हैं। 1. चंडालता, 2. मति और ऋद्धि का अहंकार, 3. चुगलखोर, 4. दुःसाहस, 5. अनुशासनहीनता, 6. अधर्मी, 7. अविनम्र तथा 8. असंविभागी।

एक साधक को तो चंडालोचित आचरण करना ही नहीं चाहिए। आदमी को मृदु व्यवहारी बनना चाहिए। आदमी यदि स्वयं शांत कषाय वाला है तो दूसरों की शांति में भी निमित्त बन सकता है और लोग भी उस ओर आकृष्ट हो जाते हैं, पर आक्रोशशील आदमी दूसरों की शांति और अपनी शांति को भंग करने वाला होता है। जो आदमी अहंकारी होता है, वह दुख-मुक्त नहीं हो सकता।

Scanned by CamScanner

इसलिए आदमी को किसी बात का घमंड नहीं करना चाहिए। एक चुगलखोर आदमी अपने लिए दुःख की स्थितियां स्वयं ही तैयार कर लेता है। चुगलखोरी बहुत खराब मानी गई है। इसे एक पाप की श्रेणी में माना गया है। आदमी दुःसाहस करता है, वह दुःख-मुक्त नहीं हो सकता। दुःसाहसिकता का अर्थ अविमृश्यकारी (बिना सोचे-विचारे काम करने वाला) किया गया है-कोई प्रसंग सामने आए और बिना चिंतन किए ही निर्णय ले लिया जाए, तो कई बार बहुत बड़ा अनष्टि हो सकता है, अप्रिय घटित हो सकता है।

जो आदमी अनुशासनहीन होता है, अपने अग्रजों का, पूज्यों का कहना नहीं मानता, उनकी अवमानना करता है-वह भी अपने लिए दुःख को पैदा करता है। जो विनीत होता है, पूज्यजनों की आज्ञा मानने वाला होता है-वह व्यक्ति सुख को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति धर्म को नहीं जानता, वह भी अपने लिए दुःख पैदा करता है। गुजरात के राजा सिद्धराजजयसिंह ने आचार्य हेमचंद्र से कहा-'धर्म का गंभीर स्वरूप समझना कठिन है। इसलिए आप मुझे 'सामान्य धर्म' का मार्ग बताने की कृपा करें।'

जो व्यक्ति विनय में अकोविद (अपंडित) है, झुकना नहीं जानता, पूज्यजनों का सम्मान करना नहीं जानता, दुराग्रह नहीं छोड़ता-वह दुःखी होता है। इसलिए व्यक्ति को विनय में कुशल होना चाहिए। विनय की आराधना से ही आत्मा का हित संभव हो सकता है। जिस व्यक्ति में संविभाग की मनोवृत्ति नहीं होती, वह भी दुःख को प्राप्त होता है। समाज में जीने वाला व्यक्ति यदि दूसरे के हिस्से को भी स्वयं लेना चाहता है, तो वहां संघर्ष की स्थिति बन जाती है। जो आदमी संविभाग करना जानता है, छोड़ना जानता है, त्याग करना जानता है-वह दुःखमुक्त हो सकता है। दुःखमुक्ति और मोक्ष के लिए शांत मनोवृत्ति जिस प्रकार आवश्यक है, उसी प्रकार जीवन का सम्यक् लक्ष्य भी निर्धारित होना जरूरी है।

आदमी पर-पदार्थों के प्रति आशा न रखे। जहां आशा का भाव होता है, वहां निराशा का भाव भी आ सकता है। इसलिए आदमी अपने प्रति संतुष्ट रहे। जब पर-पदार्थों के प्रति आशा के भाव से कोई अनासक्त हो जाता है, मानसिक, वाचिक और कायिक विकारों से दूर हो जाता है तो उस व्यक्ति को मोक्ष यहीं मिल सकता है। जीवन में तपस्या का महत्त्व होता है, साधना का महत्त्व होता है, किन्तु सम्यक् दर्शन के अभाव में उस तपस्या और साधना का अधिक महत्त्व नहीं रहता। साधक इस बात पर विचार करे कि मेरा दृष्टिकोण कैसा है? अध्यात्मपरक है अथवा पदार्थपरक? साधक वह होता है जो शरीर से संसार में रहता है, व्यवहार को निभाता है, किन्तु चित्त मोक्ष में अवस्थित रहता है अर्थात् वह जीता बाहर है और रहता भीतर है।

आदमी के भीतर राग और द्वेष– ये दो मौलिक वृत्तियाँ होती हैं। इन दोनों से अनेक प्रकार की वृत्तियाँ का निर्माण हो जाता है। कोई व्यक्ति ईर्ष्यालु है, कलहप्रिय है, चिड़चिड़े स्वभाव का है, अहंकारी है, ये सब भीतर के राग-द्वेष के संस्कार आदमी के चित्त को विकृत कर देते हैं। विशुद्धि के लिए जरूरी है भाव-विशुद्धि। यदि व्यक्ति के भाव शुद्ध हैं, ज्ञाता-द्रष्टा भाव हैं तो पदार्थ का भोग करते हुए भी वह समता में रह सकता है और यदि भाव अशुद्ध हैं, मलिन हैं, राग-द्वेष युक्त हैं तो पदार्थ विषमता का कारण पदार्थ नहीं, भावना है। मात्र भावना से व्यक्ति कहाँ से कहाँ तक पहुँच जाता है।

साधक भावविशुद्धि के साथ-साथ योगविशुद्धि भी बनाए रखे। छद्मस्थता के कारण कभी आक्रोश का भाव जाग सकता है, कभी वासना का भाव जाग सकता है, कभी भय का भाव जाग सकता है तो कभी अहंकार, लोभ, घृणा आदि का भाव जाग सकता है, किन्तु साधक का यह लक्ष्य रहे कि मुझे वृत्ति-परिष्कार करना है। यदि कषाय-शमन हो गया हो तो समझना चाहिए साधना के क्षेत्र में बहुत विकास कर लिया। धार्मिक साहित्य में जगह-जगह कहा गया है कि मानव जीवन दुर्लभ है। इस मानव जीवन का सदुपयोग करना चाहिए और पूरा लाभ उठाना चाहिए। क्योंकि आत्मा का दर्शन, आत्मा की प्राप्ति अथवा मोक्ष की प्राप्ति इस मानव जीवन से ही सम्भव है। इसलिए आदमी को यह चिन्तन करना चाहिए कि मैंने कैसा कर्म किया है? मेरा आचरण कैसा है? आदमी जैसा कर्म करता है उसके अनुसार ही उसको फल

Scanned by CamScanner

मिलता है। इसलिए आदमी अपने आचरण के प्रति जागरूक रहे। वह ऐसा कोई आचरण न करे, जिससे उसकी आत्मा कर्म-रजों से भारी बन जाए। ऐसा सोचकर जो व्यक्ति आत्मा को पापों से बचाता है, उसकी आत्मा शुद्ध रहती है, हलकी बनती है। भगवान महावीर की आत्मा भी जब तक कर्मों से भारी बनी हुई थी, भव-भ्रमण करती रही। वह जब हलकी बनी तो उन्हें आत्म-साक्षात्कार हो गया। कर्म-निर्जरा हेतु उन्होंने स्वयं को साधना के लिए, अध्यात्म के लिए समर्पित कर दिया। उनका आत्मा के प्रति, अध्यात्म के प्रति जो समर्पण था, उसे अद्भुत कहा जा सकता है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने 'शांति संपन्नोऽहंस्याम' में शांति से सम्पन्न बनूं, शांति का विकास करूं। शक्ति और शांति का प्रदर्शन मत करो। मन की शांति, भावों की शांति बनाए रखने का प्रयत्न करो। शांतिमय वातावरण का निर्माण करो, दिमाग को शांत रखो। जिसका दिमाग शांत रहता है, उसका मन भी शांत रहता है। हमने बहुत पैसे वाले लोगों को देखा, जो दुःखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। क्या शांति धन से आती है? क्या शांति हमारे मन की उपज है? मन संतुलित होता है तो व्यक्ति परिस्थिति को हंसते-हंसते झेल लेता है और मन संतुलित नहीं है तो अशांति दिमाग में उत्पन्न होती रहती है, उसकी फसल कभी काटी नहीं जाती। अतः शांति का विकास हमारे लिए बहुत जरूरी है।

गीता में कहा गया है - **''अशांतस्य कुतः सुखम्''**। अशांत को सुख कहां है? शांति के अभाव में सुख की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सुख शांति का उत्तरवर्ती कार्य है। व्यक्ति के मन में अशांति है तो वह तमाम तरह के सुख का अनुभव नहीं कर सकेगा। मन ही मन घुटता रहेगा, दुःख का अनुभव करता रहेगा। इस तरह शांति एक सार्वभौम सत्य और जीवन की परम आवश्यकता है। सुख शांति का उत्तरवर्ती कार्य है। व्यक्ति के मन में शांति है तो वह तमाम तरह के सुख का अनुभव कर सकता है। शांति नहीं है तो सुख का अनुभव नहीं कर सकेगा। जो स्वयं अशांत है, वह दूसरों को शांति की बात नहीं बता सकता, उसे शांति दे भी नहीं सकता। स्वयं शांति से जीएं और शांति का अनुभव करें, तभी शांति का महत्त्व समझ में आ सकता है, वाणी में शांति और भावों में भी शांति हो। शांति बनी रहे, इसका सबसे अच्छा उपाय है-आत्मचिंतन। व्यक्ति हर समय आत्मा का चिंतन करें। आत्मा और अध्यात्म का चिंतन कषाय को शांत रखने का सबसे सुंदर उपाय है। प्राचीन समय में विद्वान और बौद्धिक लोग मस्तक को ठंडा रखने के लिए मस्तक पर चंदन लगाते थे। अपनी शीतलता के कारण चंदन प्रसिद्ध है। चंदन लगाने का तात्पर्य यही था कि दिमाग ठंडा रहे, गर्म न हो। इसलिए शांति के लिए बहुत जरूरी है कि हम तत्काल कोई निर्णय बिना विचारे न लें। मन के प्रतिकूल कोई बात होने पर उस समय शांत रहें, तत्काल उस पर अपनी प्रतिक्रिया न दें। उस पर दो-चार दिन या जितना अपेक्षित हो चिंतन-मनन कर लें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दसवें आलियं, संपादक– आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती लाडनूं
2. भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. जैन दर्शन, मनन और मीमांसा, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
4. नया मानव, नया विश्व, आचार्य महाप्रज्ञ, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
5. पातञ्जल सूत्र, महर्षि पतन्जलि, गीता प्रेस, गोरखपुर
6. अहिंसा और अणुव्रत, सम्पादक मुनि सुखलाल, जैन विश्व भारती लाडनूं

–सहायक आचार्य
अहिंसा एवं शांति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

◆ ◆ ◆

Scanned by CamScanner